International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

प्राचीन भारत में वेदकालीन और महाभारतकालीन शिक्षा व्यवस्था

सन्दीप मलिक
एम.ए. एवं नेट (इतिहास)
म.नं. 193, सैक्टर–2, रोहतक (हरि0)
E-mail: sandeepmalik2810@gmail.com

शोध आलेख सार– प्राचीन भारत में वेदकालीन शिक्षा का आश्रम व्यवस्था से गहरा सम्बन्ध था। वैदिक साहित्य में वर्णित चार आश्रमों में ब्रह्मचर्य आश्रम की सम्पूर्ण व्यवस्था तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था से जुड़ी हुई थी। जब हम अथर्ववेद में ब्रह्मचर्य आश्रम के बारे में पढते हैं तो हमें वेदकालीन शिक्षा व्यवस्था के बारे में व्यापक जानकारी प्राप्त होती है। वस्तुतः वैदिक युग में शिक्षा व्यवस्था चर्तुवर्गीय सिद्धान्त पर आधारित थी। इसमें धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति का उद्देश्य निहित था जिसे गुरूकुल शिक्षा प्रणाली द्वारा अमलीजामा पहनाया जाता था। इस शिक्षा प्रणाली में समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आत्मविश्वास का पूरा अधिकार प्राप्त था। परन्तु महाभारत काल में राजकुमारों की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था और शिक्षा व्यवस्था में असमानता तथा भेदभाव का दोष पैदा हो गया था। इस समय बालक को शिक्षा पूर्ण होने पर गुरू दक्षिणा भी देनी पड़ती थी। महिलाओं को भी शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। प्रस्तुत शोध पत्र में वेदकालीन शिक्षा को आधार मानते हुए महाभारत काल तक हुए शिक्षा के विकास व उसकी व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है।

मूलशब्द– वेदकालीन शिक्षा, ब्रह्मचर्य आश्रम, वैदिक साहित्य, महाभारतकालीन शिक्षा।

भूमिका– वस्तुतः प्राचीन भारत में वैदिककाल में शिक्षा पद्धति का विकास धार्मिक विकास के साथ भी जुड़ा हुआ है। इस युग में वैदिक कर्मकाण्डों का बोलबाला था तथा इस कार्य में प्रशिक्षित पुरोहितों की मदद ली जाती थी। वैदिक यज्ञों के आधार पर ही विद्यार्थियों के चार वर्ग बन चुके थे जो अपने–अपने विषय में दक्षता प्राप्त करते थे। वैदिक मन्त्रों का ज्ञान व इन मन्त्रों को स्वरबद्ध करने की शिक्षा बालकों को

दी जाती थी। मन्त्रों सस्वर पाठ करने के कारण संगीत की शिक्षा भी अनिवार्य हो गई थी। वास्तव में शिक्षा का अर्थ मानव जीवन में सम्पूर्ण शक्तियों के विकास से सम्बन्धित था। तत्कालीन समय में स्वाध्याय का भी विशेष महत्व था। आवश्यकतानुसार कोई भी व्यक्ति गुरू के समीप जाकर शिक्षा ग्रहण कर सकता था। इसके लिए आवश्यक था कि वह ब्रह्मचर्य आश्रम के सभी नियमों का विधिवत पालन करने वाला हो। शिक्षा की अवधि अनिश्चित थी और जब विद्यार्थी शिक्षा पूरी करके अपने घर जाता था तो उसका समावर्तन संस्कार होता था।[1]

वैदिक साहित्य का अध्ययन केवल ब्राह्मणों के लिए था तथा कभी–कभी क्षत्रिय भी ब्रह्मा विद्या में पारंगत होते थे। इस युग में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का बराबर का अधिकार था। कभी–कभी वे आध्यात्मिक विद्या में पुरूषों के बराबर थी। गार्गी और याज्ञवलक्य का शास्त्रार्थ उस समय की शास्त्रार्थ विद्या का अनुपम उदाहरण है। स्त्रियों को नृत्य और संगीत की शिक्षा विशेष रूप से दी जाती थी।[2] इस समय वेदांग, न्याय, मीमांसा, ब्रह्मविद्या, इतिहास, पुराण, व्याख्यान, आख्यान, गाथा, क्षात्रविद्या, राशि, नक्षत्र विद्या, सूत्र, उपनिषद, देव–ज्ञान विद्या आदि का भी प्रचलन हो चुका था। नक्षत्रों का ज्ञान भी इस युग में कराया जाता था तथा ज्ञान का क्षेत्र निरन्तर विस्तृत हो रहा था।

गणित तथा विज्ञान शास्त्रों का विकास वैदिक काल में ही शुरू हुआ। अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, ज्योतिष्य, भौतिक विज्ञान, रसायन शास्त्र, शरीर विज्ञान, वनस्पति शास्त्र, प्राणीशास्त्र तथा आयुर्वेद पर काफी बल इस युग में दिया जाने लगा था।[3]

---

[1] मिथिलाशरण पाण्डेय, **प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएं**, पृ0 38.

[2] **वृहदारण्यक उपनिषद**, 6–4–17.

[3] शिवदत्त ज्ञानी, **वेदकालीन समाज**, पृ0 81

चूंकि भारत का सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है जिसके अध्ययन से यह बात उजागर हुई है कि ऋग्वेदकाल में शिक्षा व्यवस्था बड़ी व्यवस्थित थी तथा शिक्षण कार्य को बड़े सम्मान के साथ स्वीकार किया जाता था। ऋग्वेदकालीन ऋषि–मुनि काफी विद्वान थे और स्वयं ऋग्वेद विद्वता का अमृत है, जिसमें उच्चतम, दार्शनिक और धार्मिक विचार उपलब्ध हैं जो तत्कालीन शिक्षा पद्धति की सार्थकता को सिद्ध करते हैं। उस समय प्रमुख शिक्षाविद्ध ऋषि कहलाते थे और वे गुरूकुल में अपने शिष्यों को एकाग्र चिन्तन द्वारा तप तथा योगसाधना से सत्य का साक्षात्कार करवाते थे। उस समय मानव जीवन के विशिष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखकर ही शिक्षा प्रणाली का विकास किया गया था। यही कारण है कि वेदकालीन साहित्य और शिक्षा आत्मचिंतन से ओत–प्रोत रही है। अतः वेदकालीन शिक्षा का उद्देश्य मानव की शारीरिक एवं मानसिक, बौद्धिक व आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करके भौतिक व आध्यात्मिक जीवन में सामंजस्य स्थापित करना था।[4]

वैदिक काल में बालकों को सर्वांगीण विकास के लिए ही शिक्षा दी जाती थी और सात या आठ वर्ष की आयु में उनका आश्रम में प्रवेश करवाया जाता था। उपनयन संस्कार के बाद बालक गुरूकुल का सदस्य बन जाता था तथा गुरू व शिष्य में आत्मीयता का भाव पैदा हो जाता था। सत्य, तप, त्याग व ज्ञान आदि की मूर्ति गुरू के सद्चरित्र एवं व्यक्तित्व का प्रभाव बालक पर पड़ता था और बालक विशुद्ध प्राकृतिक वातावरण में अपनी नैसर्गिक शक्तियों का विकास करते हुए विद्या ग्रहण करता था। गुरूकुल में छात्र को ऊँच–नीच का भेदभाव भुलाकरर समभाव से रहना पड़ता था। कई इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि वैदिक युग में किसी प्रकार का सामाजिक भेदभाव नहीं था, परन्तु परवर्तीकाल में मनु की सामाजिक व्यवस्था में शूद्रों का गुरूकुल में शिक्षा ग्रहण करना निषेध हो गया।[5]

---

[4] भरतलाल चतुर्वेदी, **महाभारतकालीन समाज व्यवस्था,** पृ 85.

[5] सत्यमित्र दुबे, **मनु की समाज व्यवस्था,** पृ0 78

गुरूकुल में सभी छात्र भिक्षावृति से सादा जीवन व्यतीत करते थे और प्रत्येक बालक को स्वावलंबन के सिद्धान्त पर कार्य करना पड़ता था और अपने हाथों से गुरू की सेवा भी करनी पड़ती थी। यज्ञ के लिए उसे वन से समिधा भी लानी पड़ती थी और निकटवर्ती गांवों से भिक्षा भी मांगकर लानी पड़ती थी। ब्रह्मचर्य का पालन, तप, व वेदों का अध्ययन छात्र के प्रमुख कर्म थे। इस युग में विद्या का स्तर परिपक्व था। छात्रों को वेदों का अर्थ समझकर उन्हें सस्वर रटकर कंठस्थ करना पड़ता था। इस युग में समाज के प्रत्येक स्त्री–पुरूष, नीच–ऊँच, सबको उत्तम शिक्षा के द्वारा आत्मविकास का पूरा अधिकार था। इस युग में विभिन्न शास्त्रों तथा विद्याओं का विकास हुआ, जैसे– संहिता पाठ, पद पाठ, कर्म पाठ, स्वरों का प्रयोग, व्याकरण शास्त्र, छंद शास्त्र, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि। इसके अतिरिक्त ज्योतिष्य शास्त्र, आयुर्वेद, इतिहास, भूगोल, राजनीति, अलंकार, आदि का ज्ञान भी छात्रों को करवाया जाता था।[6] यजुर्वेद के आरम्भिक काल तक शूद्रों को विद्या ग्रहण करने की जो सुविधा थी, वह मनु परम्परा में खत्म हो गई। इस समय छात्र को चरित्र सुधार की दृष्टि से तथा सही मार्ग पर लाने के लिए दण्ड की भी व्यवस्था थी।

प्राचीन भारत की महाभारतकालीन शिक्षा में मनुवादी तत्व विद्यमान रहे। इस समय वैदिक युग से चली आ रही गुरूकुल परम्परा का भी प्रचलन था। अब राजा–महाराजा अपने बालकों (राजकुमारों) को वन में भेजने की बजाय आचार्य लोगों को नगर के समीप ही आश्रम प्रदान करने लगे ताकि राजकुमारों को शिक्षा ग्रहण करने में कोई असुविधा न हो। इस युग में भी गुरूओं का सम्मान पहले जैसा ही रहा। अब राजकुमारों को वेदों का अध्ययन करने के साथ–साथ धनुर्वेद की भी शिक्षा दी जाती थी। शिष्यों द्वारा गुरू की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया जाता था। आरूणी ने पुरोहित धौम्य के शिष्य के रूप में खेत का पानी रोकने के लिए मिट्टी की जगह स्वयं को ही लगा दिया था। उनके इस भक्तिभाव से खुश होकर तपस्वी धौम्य ऋषि

[6] भरतलाल चतुर्वेदी, **महाभारतकालीन समाज व्यवस्था,** पृ 87.

ने उनको आर्शीवाद दिया और बाद में वह तपस्वी शिष्य आरूणी महामुनी उदालक नाम से प्रसिद्ध हुआ।

महाभारत काल में राजकुमारों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था तथा इस कार्य के लिए श्रेष्ठ से श्रेष्ठ आचार्यों की खोज की जाती थी। कृपाचार्य के द्वारा शिक्षा पूर्ण होने पर भीष्म ने अपने पौत्रों के लिए ऐसे आचार्यों की भी खोज की जो उन्हें धनुर्विद्या में निपुण व पारंगत बना सके। इसके लिए द्रोण को आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया, जिन्होंने कौरवों व पाण्डवों को शिष्य रूप में स्वीकार किया। गुरू द्रोण ने स्वयं भी भीष्म पितामह को कहा कि आप यहाँ रहकर राजकुमारों को धनुर्विधा तथा अस्त्र–शस्त्रों की श्रेष्ठ विद्या दे सकते हैं। शिष्यों में भी इस समय पर्याप्त गुरू भक्ति होती थी और वे काफी परिश्रमी होते थे। वे हमेशा अभ्यास में लगे रहते थे फिर भी अर्जुन जैसे शिष्य अधिक अभ्यास करके अन्य शिष्यों से आगे निकल गए थे। गुरूजनों को शिष्य काफी प्रिय थे। इस काल में युद्ध का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। अर्जुन को भी द्रोणाचार्य द्वारा घोड़ो, हाथियों, रथों, तथा भूमि पर रहकर युद्ध करने की शिक्षा दी गई। इसके साथ–साथ गुरू द्रोणाचार्य ने अन्य कौरवों व पाण्डवों को भी गदायुद्ध, असि, तोमर, प्राश, और शक्तियों के प्रयोग की कला एवं एक ही साथ अनेक शस्त्रों का प्रयोग व अकेले ही अनेक शत्रुओं के साथ युद्ध करने की शिक्षा दी।

इससे स्पष्ट होता है कि महाभारतकाल में राजकुमारों की शिक्षा उन्नति के शिखर पर थी। इसके लिए समुचित प्रबन्ध किये जाते थे और राजकुमारों को वेदों के अध्ययन के साथ–साथ युद्ध विद्या में भी पारंगत किया जाता था।[7] राजकुमारों को विभिन्न प्रकार के दिव्यास्त्रों के प्रयोग करने की विद्या भी दी जाती थी। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण वेदत्रयी, तर्कशास्त्र, कृषि, वाणिज्य, तथा दण्डनीति का भी ज्ञान छात्रों को करवाया जाता था। इसके साथ–साथ युक्तिशास्त्र, शब्द शास्त्र, गान्धर्व

[7] **आदिपर्व** 109, 19-20

शास्त्र, पुराण, इतिहास, आख्यान आदि अनेकों कलाएं शिक्षणीय विषयों में शामिल थी।[8] गुरू दक्षिणा का प्रचलन काफी जोरों पर था। गुरू की संतुष्टि ही श्रेष्ठ दक्षिणा मानी जाती थी। शस्त्र शिक्षा समाप्त होने पर जब कौरवों व पाण्डवों ने गुरू द्रोणाचार्य से दक्षिणा के लिए अनुमति मांगी तो आचार्य ने उनको पांचाल नरेश द्रुपद को पराजित करके बन्दी रूप में लाने को ही दक्षिणा रूप में स्वीकार किया।

कई साक्ष्यों से पता चलता है कि इस समय शूद्रों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था तथा शिक्षा जैसे पुनीत कार्य को भी धर्म से जोड़ दिया गया था। शूद्र वर्ण के व्यक्ति वेदों का अध्ययन नहीं कर सकते थे तथा यज्ञ वेदी के समीप भी नहीं जा सकते थे। उनके लिए वेदों की ऋचाएं सुनने का निषेध था तथा वे ओम का उच्चारण तक नहीं कर सकते थे। इस काल में ब्राह्मण ही अध्यापक होते थे क्योंकि इस पेशे पर उनका एकाधिकार था। विद्यार्थी के लिए आलस्य, मद–मोह, चंचलता, गोष्ठी, उदण्डता, अभिमान, और स्वार्थ त्याग आवश्यक था। वेदों का अध्ययन करना ब्राह्मणों का कर्त्तव्य था।

इस काल में स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में भी पता चलता है कि राजकन्याओं के लिए शिक्षा का प्रबन्ध अवश्य किया जाता था। द्रोपदी, उत्तरा, सत्यवती, कुन्ती, आदि महाभारत काल की विदुषी महिलाएं हैं। वैदिक युग में भी स्त्री शिक्षा का व्यापक प्रचार–प्रसार हुआ था। शिक्षा को राज समर्थन प्राप्त था क्योंकि वर्णाश्रम धर्मों को पालन करवाने का राजा का कर्त्तव्य था तथा धर्मशास्त्रों द्वारा भी उसे यह अधिकार मिला हुआ था। राजसभाओं में भी विद्वानों को आमंत्रित किया जाता था और उनका बड़ा सम्मान होता था। महाभारत के पूर्वकाल में मिथिल विद्या का बहुत बड़ा केन्द्र था।

[8] **शान्ति पर्व,** – 59, 33.

सारांश– अतः वैदिक काल में जो शिक्षा व्यवस्था थी, वह महाभारतकाल तक आते–आते कुछ बदल गई। जहां वैदिक काल में शूद्रों को शिक्षा का अधिकार दिया गया था, वह अब महाभारत काल में आकर समाप्त हो गया। फिर भी स्त्री शिक्षा के बारे में दोनों ही युगों में अवश्य ही व्यवस्था की गई थी। परन्तु महाभारत काल में सामाजिक असमानता को बढाने वाली शिक्षा व्यवस्था की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि इसमें मनुवादी तत्व हैं। इसके बावजूद वैदिक युग की आश्रम व्यवस्था पर आधारित गुरूकुल शिक्षा पद्धति महाभारत काल में अपने श्रेष्ठ स्तर पर पहुंच गई। इस काल के आचार्य बड़े ही विद्वान थे और उंचे चरित्र वाले थे। शिष्य को उचित मार्ग पर लाना वे अपना पुनीत कर्त्तव्य समझते थे और शिष्य भी गुरूओं का बड़ा आदर करते थे तथा शिक्षा पूर्ण होने पर गुरू दक्षिणा भी देते थे।

सन्दर्भ सूची–

1. शिवदत ज्ञानी, **वेदकालीन समाज,** चौखम्बा प्रकाशन, वाराणासी, 1967.
2. भरतलाल चतुर्वेदी, **महाभारतकालीन समाज व्यवस्था,** विद्या प्रकाशन मन्दिर, नई दिल्ली, 1981.
3. रमाशंकर त्रिपाठी, **प्राचीन भारत का इतिहास,** मोतीलाल बनारसी दास, वाराणासी, 1982.
4. विमल चन्द्र पाण्डेय, **प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास,** सैन्ट्रल पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, 1992.
5. सुमन गुप्ता, **प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,** स्वामी प्रकाशन, जयपुर, 2000.
6. डी.एन. झा, **प्राचीन भारत– सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की पड़ताल**, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, 2000.
7. रोमिला थापर, **प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, ग्रन्थ शिल्पी,** दिल्ली, 2001.
8. शैलेन्द्र सेंगर, **प्राचीन भारत का इतिहास,** अटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2005.

9. एस.एल. नागोरी एवं कान्ता नागोरी, **प्राचीन भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास,** राज पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 2007.
10. कैलाश खन्ना, **प्राचीन भारत का इतिहास,** अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2010.
11. रणबीर चक्रवर्ती, **भारतीय इतिहास का आदिकाल– प्राचीनतम पर्व से 600ई0 तक,** ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2012.
12. सोहनराज तातेड़, **प्राचीन भारत का आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक इतिहास,** खण्डेलवाल पब्लिशर्स, जयपुर, 2015.